मूषक

अपने पण्डित जी बहुत परेशान थे घने शहर के भीतर जिस मुहल्ले में वे रहते थे वहाँ अबकी भीषण दंगा हुआ था।

उनका मुहल्ला हाजियों का मुहल्ला कहलाता। ज्यादातर हाजी थे वहाँ। पण्डित जी और उनके भाई बिरादरों के चार-पाँच मकान ही थे उस मुहल्ले में। पण्डित जी कचहरी में मुलाजिम थे। नौकरी के बाद का समय पूजा-पाठ में लगाते। अपने एक लड़के को डॉक्टर और एक को इंजीनियर बनवा दिया था। बड़ा लड़का मिलिट्री में डॉक्टर था और छोटा पी. डब्ल्यू. डी. में इंजीनियर। जमकर पैसा पीट रहा था। एक अनाथ भतीजा साथ रहता था जिसे उन्होंने ही पाला था। मियाँ बीवी की चैन से गुजर रही थी।

मुहल्ले में पण्डित जी का बड़ा सम्मान था। हिन्दू मुसलमान सभी समान रूप से उनको इज्जत देते थे और उनसे सलाह-मशविरा किया करते थे। जितने पूजा-पाठ वाले पण्डित जी थे उतने ही रोजे-नमाज के पाबन्द उनके सबसे करीबी मित्र हाजी अजमल थे।

अबकी पूरा शहर दंगों की आग में ऐसा धधका कि उसकी आँच पण्डित जी तक भी भरपूर आई। दूसरे मुहल्ले से आए गुण्डे और बलवाइयों ने उन लोगों के होते हुए पण्डित जी के घर पर पत्थर बरसाये और आग लगाने की कोशिश की जो उनके पड़ोसियों ने नाकाम कर दी और उन बलवाइयों को वहाँ से बलपूर्वक भगाया।

अपने जन्म से लेकर अब तक पण्डित जी की इतनी उम्र होने को आई लेकिन ऐसा हादसा कभी नहीं हुआ था। उनकी जान तक को खतरा हो गया था। वे केवल परेशान ही नहीं थे बल्कि भयभीत भी थे। लगा कि उनके पड़ोसी सिर झुकाए असहाय से हैं। उनके शतरंज के साथी हाजी अजमल शर्मिन्दा थे।

पण्डित जी के एक रिश्ते के चचेरे भाई सत्तारूढ़ पार्टी की सरकार में मन्त्री थे। वे पद में वरिष्ठ और प्रभावशाली थे। पण्डित जी ने कभी किसी काम के लिए उनके सामने हाथ नहीं फैलाया। नाते बिरादरी में किसी समारोह, कोई शादी-ब्याह के अवसर पर ही उनसे भेंट होती। लेकिन इस घटना के बाद पण्डित जी राजधानी में अपने मन्त्री चचेरे भाई के घर पर लगातार एक महीना डेरा डाले रहे....फिर जब वापस लौटे तो प्रसन्न थे।

पण्डित जी की एक छोटी-सी जरूरत थी। जिलाधिकारी ने उन्हें सिविल लाइन क्षेत्र में सरकारी योजना में बने मकानों में से एक मकान आवंटित करा दिया था।

पण्डित जी परिवार सहित नए मकान में चले गए। बिरादरी के और लोग उनसे ईर्ष्या ही कर सकते थे। उनकी किस्मत को सराहते और अपनी किस्मत को कोस सकते थे। उन्हें भी इस इलाके से दूर कोई नया मकान मिल जाता तो कितना अच्छा होता। तलाश तो सभी कर रहे थे लेकिन किराए आसमान पर थे। हर दंगे के बाद ऐसे सुरक्षित इलाकों में मकानों के किराए दुगनें हो जाया करते थे।

नया मकान शहर से थोड़ा अलग हटकर था। नई बनी सरकारी कालोनियाँ शहर से आगे विस्तार योजना का हिस्सा थीं। इस कालोनी के कुछ मकानों में लोग आकर बस गए थे और कुछ में आ रहे थे। बाजार वगैरह भी धीरे-धीरे बन रहा था। लेकिन अभी थोड़ा वीरानापन था। कालोनी से लगा थोड़ी दूर पर एक गाँव था।

पण्डित जी खुश थे। साफ हवा। भीड़भाड़-शोरगुल से दूर स्वच्छ शान्त वातावरण। न धुआँ....न शोर। ऐसा ही एकान्त पण्डित जी भी चाहते थे। उनका पुराना मकान शहर की घनी बस्ती में गली के भीतर धँसा हुआ था। हर वक्त धमा-चौकड़ी....पड़ोसियों की आवत-जावत। घर के भीतर लाख सफाई रखो लेकिन गली तो गली ही ठहरी।

राजधानी में पण्डित जी के रिश्ते के भाई जो वरिष्ठ मन्त्री थे वे भी प्रसन्न थे कि कभी तो पण्डित जी उनके पास आए और किसी काम के लिए कहा। लेकिन उनके मन्त्री भाई पण्डित जी की ओर से ज्यादा दिन खुश नहीं रह सके। साल भर बीतते-बीतते पण्डित जी ने फिर राजधानी में डेरा डाल दिया था। अबकी उनकी पत्नी भी उनके साथ थीं। उनके मन्त्री भाई हैरान। अब क्या हो गया। पण्डित जी बहुत भयभीत और त्रस्त थे। दिन-दहाड़े उन मकानों में चोरी हो जाती। देर सबेर लौटो तो राहजनी के शिकार। पिछले दिनों पड़ोस के मकान में डकैती पड़ी खूब चीख-पुकार मची लेकिन कोई आसपास से निकलकर नहीं आया। पण्डित जी की आदत पुराने मुहल्ले वाली थी। तुरन्त डण्डा लेकर निकल आए—लेकिन अकेले और वह भी डण्डे के साथ। डकैत गोलियाँ चलाते डराते-धमकाते लूटपाट मचा गए। इस घटना से पण्डित जी बहुत घबरा गए। उन्होंने तय कर लिया कि अब इस जगह नहीं रहना है। दोनों पति-पत्नी महीना भर राजधानी में पड़े रहे। आखिर काम हो ही गया।

पण्डित जी ने नौकरी छोड़ दी। वे पहाड़ पर रहने अपनी पैतृक जगह चले गए। अपनी सारी पूँजी लगाकर एक बस खरीद ली। रिश्तेदार मन्त्री भाई ने परमिट दिलवा दिया था। उनकी बस चलती और गुजारे लायक अच्छा मिल जाता।

पण्डित जी पहाड़ के वासी थे। उनके पिताजी नौकरी की खातिर पहाड़ से उतर कर मैदान की तरफ देश में आ बसे तो बस, देश के ही होकर रह गए। अपने पैतृक स्थान पर उनका मकान जीर्ण-शीर्ण अवस्था में था। मरम्मत तो क्या होनी थी, नए सिरे से ही मकान बनवाना पड़ा। आस-पड़ोस के अपने रिश्तेदारों ने मदद की। उनसे मिलना-जुलना हुआ तो ऐसा लगा मानो अपनी बिछुड़ी मातृभूमि से फिर आ मिले हों। परम तृप्त हो गए पण्डित जी।

वे अब अति प्रसन्न थे। सारे देश में कहीं दंगे, कहीं फसाद। जगह-जगह आतंकवादी ए. के. सैंतालीस या दूसरे विदेशी हथियार घुमाते फिराते। कहीं अपहरण, कहीं आगजनी, कहीं बम विस्फोट। यहाँ अपने पुरखों की गोद में उन्हें स्वर्गिक शान्ति थी। ऊँचे-ऊँचे शान्त पहाड़। ठण्डी हवा। ठण्डा पानी। सीधे-सच्चे लोग। अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपने लोग, इतना अपनापन। वे अभिभूत थे।

उनके देवस्थान पर एक दिन अचानक गाज गिरी। उनकी वापस लौटती बस को आतंकवादियों ने लूट लिया। उनका भतीजा बस में था। उसके पास से पूरा कैश लूट लिया। उसके विरोध करने पर उसे घायल करके ड्राइवर और कण्डक्टर के साथ नीचे उतार कर डाल दिया और बस को अगुवा कर ले गए और बाद में पूरी बस को बम से उड़ा दिया।

पण्डित जी का तो हार्टफेल होते-होते रह गया। बच गए वह। आतंकवादी देश के कोने-कोने से निकल पहाड़ों की तलहटी से होकर ऊपर शिखरों तक भी पहुँच जाएँगे—कोई कल्पना नहीं कर सकता था। शिखरों पर स्थित देव स्थान से उन्हें किसी ने पाताल लोक के अँधेरे में डाल दिया था।

वे तो बरबाद हो गए थे। तन से, मन से और धन से भी।

उनका छोटा लड़का जो विदेश में था, एक दिन हिन्दुस्तान आया और पण्डित जी तथा अपनी माँ को अपने साथ ले गया। अबकी बार पण्डित जी को राजधानी में डेरा डालने की जरूरत नहीं हुई। उनके मन्त्री भाई ने खुद ही उनकी मदद की और हफ्ते-दस दिन में पासपोर्ट, वीजा दिलवा दिया।

जाते वक्त पण्डित जी मुझसे मिलने आए थे। जरूर पिछले जन्म में पुण्य किए थे कि श्रवण कुमार जैसा पुत्र मिला। कहता था कि अब वह उन लोगों को कभी वापस नहीं आने देगा। क्या धरा है हिन्दुस्तान में। पूरा देश मानो रणभूमि बना हुआ है। एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक—ऊपर से लेकर नीचे तक झगड़े। जगह-जगह आतंकवादियों का राज। दंगे, फसाद। कोई कानून, कोई व्यवस्था नहीं। आदमी की जान कौड़ियों के मोल है। कहीं कोई सुरक्षा नहीं....ऐसा पण्डित जी कहते रहे। पण्डित जी विदेश चले गए। उनके खत आते रहते थे। शुरू-शुरू में जल्दी-जल्दी। बाद में यदा-कदा। फिर बन्द हो गए। मैं समझा कि अब उन्होंने ढाल लिया है अपने आप को विदेशी आबो-हवा में। मन लग गया है उनका। चलो अच्छा हुआ। सुख-चैन से तो हैं।

•

कुछ साल बाद एक दिन उसी दंगे वाले शहर में जाना हुआ। एक दोस्त की बारात में गया हुआ था। शाम को चाय पीकर जनवासे से निकला। थोड़ा बाजार की ओर टहलने का इरादा था। तभी आवाज सुनाई दी। कोई पुकार रहा था। जिधर से आवाज आई उधर ही जाकर देखा।

एक स्टेशनरी की दुकान थी। काउण्टर के पीछे बैठा व्यक्ति आवाज दे रहा था। उसे देखकर कुछ पहचान तो उभरी लेकिन इत्मीनान नहीं था। पास जाकर देखा।

अपने पण्डित जी थे। उनका तो हुलिया ही बदला हुआ था। कहाँ पुराने कुर्ता-पाजामा वाले चन्दन का टीका धारे और कहाँ सूट-बूट डाटे पण्डित जी। विदेश प्रवास ने उनका लिबास बदल डाला था। खासे स्मार्ट लग रहे थे। पास ही एक कुर्सी पर उनके पुराने मित्र हाजी अजमल बैठे थे। वही उनकी अधपकी दाढ़ी, काली शेरवानी और हाथ में बेंत। दोनों बैठे बतिया रहे थे।

—'मास्टर जी, बहुत दिनों बाद दिखे।'

—'पण्डित जी, आप तो विदेश चले गए थे। कब लौटे? किसी काम से आए हैं? कितने दिन हैं अभी आप यहाँ?'

—'अरे मास्टर साहब! अपने पण्डित जी तो चूहा हैं चूहा। घूम-फिर कर फिर चूहा बन गए और आ गए अपने बिल में। चक्कर लगा आए दुनिया का....' जवाब दिया हाजी साहब ने।

बहरहाल पण्डित जी ने जो बताया उस पर हँसी भी आई और दुःख भी हुआ। उन्होंने बताया कि वहाँ अपने को व्यवस्थित कर ही लिया था उन्होंने...। नई जगह, नया माहौल, अलग भाषा, अलग तरह के लोग तिस पर ढलती उम्र। फिर भी ढाल ही लिया था उन्होंने अपने को। रचने-बसने लगे थे वह वहाँ की आबो-हवा में। हाँ, तो एक दिन वह शाम को पैदल अकेले ही हवाखोरी के लिए निकल पड़े थे। वहाँ के इलाके से खासे परिचित हो गए थे इसलिए कोई परेशानी नहीं थी। लौटते में थोड़ी शाम हो गई थी। करीब दो फर्लांग का रास्ता सुनसान पड़ता था। वहाँ अचानक चार-पाँच नौजवान गोरों ने उन्हें घेर लिया। सफाचट मुँडे सिर वाले वे लड़के उस दल के सदस्य थे जो अपने देश की धरती पर विदेशी से घृणा करते थे। खासतौर पर हिन्दुस्तान या हिन्दुस्तान जैसे और मुल्कों से आए भूरी-काली नस्ल के लोगों से वह बेहद घृणा करते और उन्हें आतंकित करते थे। खूँखार नौजवान थे वह! पहले तो वह हँसते-बतियाते रहे....फिर उद्दण्ड हो गए। पण्डित जी को धकियाने और गाली देने लगे और फिर उन्हें पीटना शुरू कर दिया।

'मास्टर जी, अपने मुल्क में इतना कुछ हुआ लेकिन कभी किसी ने हाथ नहीं लगाया था। फिर तन की चोट उतनी नहीं थी जितनी अपमान की चोट थी और भय था। अनजान जगह। कोई अपना नहीं। मैं वहीं बेहोश होकर गिर पड़ा....। होश आया तो एक पुलिस वाला पास था। वह टैक्सी में बिठाकर घर छोड़ गया। उस दिन तो साक्षात् मौत के दर्शन हो गए थे मास्टर जी। मैंने कहा कि मरना ही है तो अपनी जमीन पर मरूँगा....यहाँ परदेस में नहीं। वहाँ तो मरते वक्त अगर मुँह से कुछ निकला तो कोई समझने वाला भी नहीं होगा। सामने कोई पहचाना चेहरा भी न होगा....मरना ही है तो फिर अपने लोगों के हाथों ही मरना क्या बुरा है'....

—'अरे मास्टर साहब। कहीं नहीं मर रहे पण्डित जी। हमें मार कर मरेंगे ये....' हाजी साहब ने फिर अपना भरपूर ठहाका लगाया।

मन्द-मन्द मुस्कराते पण्डित जी अपनी छोटी-छोटी आँखें मिचमिचा रहे थे।